नैतिक बल Naitik Bal Story by Yashpal

रेल के दूसरे तीसरे दर्जे में, यात्रियों से, इंसानियत के नाम पर बैठने भर की जगह के लिए अनुरोध किया जा सकता है। फ़र्स्ट क्लास में ऐसी बात से कुछ झिझक होती है लेकिन चल भी जाता है। वातानुकूलित (एयर-कंडीशन) में ऐसी बात ओछापन। ऐसा अनुरोध अनसुना रह जाए या रूखा जवाब मिले --इंतज़ाम करके आना चाहिए था।

छः-सात साल पहले की घटना है। तरक्की में ब्रांच मैनेजर बन गया था। उसके साथ ही सफ़र के दर्जे में भी प्रमोशन। यात्रा केवल चार घंटे की। रात साढ़े ग्यारह बजे बरेली में उतरना था। पूरे बर्थ की ख़ास ज़रुरत न थी। निजी काम से या किसी मातहत के साथ न होने पर सेकेण्ड-फर्स्ट में चला जाता परन्तु कंपनी के काम से जा रहा था। स्टेनो पहुंचाने आया था और चपरासी साथ। निचले दर्जे में सफ़र से कम्पनी की प्रेस्टीज का सवाल था।

वातानुकूलित बोगी में लगभग आधे कूपे। सभी में नीचे की सीट पर दो-दो मुसाफ़िर। यानी प्रति बर्थ एक मुसाफ़िर। चार बर्थ के केवल तीन डिब्बे। दो में चारों बर्थ पर मुसाफ़िर। एक में केवल तीन मुसाफ़िर। संध्या के साढ़े सात का समय। एक बर्थ पर पक्की आयु का एक पुरुष खिड़की की ओर पीठ सटाये अध-पसरा। दूसरे पर साड़ी में युवा छरहरे नारी शरीर का आभास।

एक स्त्री गाड़ी के फ़र्श पर रखे बक्स पर बैठी थी। चार घंटे ऊपर खाली बर्थ पर लेटे गुज़ार देना भी मंजूर था परन्तु डिब्बे पर खड़िया से लिखा था---'रिज़र्व्ड कम्पार्टमेंट'।

इस डिब्बे के सामने से एक बार गुज़र चुका था। पुरुष से आँखें मिली थीं, मेरी स्थिति भी समझ गया था। पुरुष के चहरे और आँखों में साधिकार वर्जना ऐसी तमतमाहट कि अनुरोध का साहस कठिन। उस कम्पार्टमैंट के सामने से दूसरी बार गुज़रा तो पुरुष ने, शायद मेरी आतुरता के विचार से, हाथ के संकेत से टोका, प्ले कार्ड्स?"

स्थिति भांप कर मुस्कान से उत्तर दिया--"ओह, विद प्लेजर।"
"कम इन" पुरुष ने निमंत्रण दिया।

कुली से अपना सूटकेस भीतर रखवा कर डिब्बे में कदम रखा तो अच्छी व्हिस्की और बढ़िया सिगरेट के धुंए की गंध। पुरुष ने अपनी जगह सीधे होकर अपने बर्थ पर बैठने की जगह दी। ताश की एक गड्डी समीप रखी थी।

पुरुष ताश की गड्डी फैंटते हुए बोला--"रमी।"

"ओ. के. " स्वीकारा। एक बार विचार आया पूछ लूँ --कितना प्वाइंट? परन्तु ओछी बात की झिझक से प्रश्न रोक लिया।
पुरुष ने पत्ते बांटने से पहले बक्स पर बैठी स्त्री की ओर देखकर दो उंगलियाँ उठा दी।

स्त्री के शरीर पर अच्छी छपी हुई साड़ी थी परन्तु बैठने के ढंग मुद्रा से नौकरानी। चहरे और नाक पर चौड़ी फुल्ली से दार्जलिंग आसाम की ओर की पहाड़न।

स्त्री ने आदेश पाकर डिब्बे की दीवार पर गिलास टिकाने के लिए लगी तार की घटोलियों से दो गिलास ले लिए। सुराही से जल लेकर गिलासों को प्लास्टिक की बाल्टी में खलखलाया। छोटे साफ़ सफ़ेद तौलिये से गिलासों को पोंछा। टिफ़िन बॉक्स से बोतल निकाली।

कनखी से देखा, सफ़ेद घोड़ा स्कॉच थी। उससे अधिक कनखी से देखने का आकर्षण था सामने बर्थ पर लेटा, साड़ी में लिपटा हुआ युवा नारी शरीर। अपने समाज के शील के विचार से उधर से नज़र हटा ली। एक ही नज़र में दिख गया था--गोरी, छरहरी तन्वांगी थी। एक टांग सीधी पसरी हुई, एक घुटना उठा।

कोहनी से उठी बांह के हाथ की उँगलियों में थमे सिगरेट से धुंए की पतली रेखा उठ रही थी। कलाई से सफेद नग जड़ी सोने की चूड़ियाँ नीचे ढलकी हुई। बांह और चेहरा, हाथ हाथीदांत जैसे गोरे। दूसरा हाथ माथे पर रखा, हथेली ऊपर की ओर। मुझ जैसे बेपरवाह कलाकार की कल्पना जैसी सुन्दर, पतले लाल होंठ, सुघड़ नाक पर हीरे की बड़ी कनी की कील।

नौकरानी ने दो गिलासों में व्हिस्की डालकर तन्वंगी की और देख कर पूछा। युवती ने माथे पर रखा हाथ इंकार में हिला दिया। नौकरानी ने थर्मस से दोनों गिलासों में बर्फ़ के दो-दो टुकड़े डाले। सीट के नीचे से दूसरी टोकरी से लेकर एक बोतल सोडे की खोली। दोनों गिलासों में अधोआध कर गिलास हमारे सामने कर दिए। गिलास लेकर धन्यवाद में पुरुष की ओर मुस्कराया, "बेस्ट लक।"

"चियर्स!" बिना मुस्कान उत्तर।
व्हिस्की के घूँटों के साथ रमी शुरू हुई। सच बात तो यह कि नज़र सामने की बर्थ से बचाये रखने के प्रयत्न के बावजूद ध्यान में वही अपूर्व सौंदर्य! परन्तु पत्तों की ओर ध्यान रखना भी आवश्यक था। पहले हाथ में मेरे तीन प्वांट बने।

मुझे कुछ विस्मय-- अपनी पत्नी के लिए बात का ऐसा ढंग। वह अंग्रेज़ी बोल रहा था। उसने दूसरे हाथ के लिए पत्ते मेरी ओर सरका दिए! मैं फैंट रहा था। उसने बात शुरू कर दी, कितनी थकावट और बोरियत। देहरादून तक चौंसठ घंटे का सफ़र। दोपहर बाद तेजपुर से प्लेन में दिल्ली। रात देहरे के लिए ट्रेन। कितना आसान हो जाता है लेकिन उड़ान के ख़याल से इस औरत (उसने दूसरी बर्थ की और संकेत किया) का कलेजा काँप जाता है।

"मेरा नियम है, एक साल सितम्बर में दार्जलिंग, दूसरे साल मसूरी। मसूरी में अच्छी कंपनी रहती है, पुराने परिचित मिल जाते हैं।" वह कहता गया। वह ठहर-ठहर कर घूँट ले रहा था। मुझे भी उसी तरह अंतराल में घूँट पीते देखकर शिकायत से बोला--"इतनी धीमे? मैं तो सांझ से तीन ले चुका। आप लें!"

"ठीक है, ठीक है।" उसे धन्यवाद दिया। उस हाथ भी मेरे चार प्वाइंट बने। अगले हाथ में उसे दो प्वाइंट मिले। चौथा हाथ समाप्त होने पर उसने गिलास समाप्त कर मेरी ओर अनुरोध से देखा, "ख़त्म कीजिए न!"

उसकी बात रखने के लिए शेष दो घूँट में सब खींच लिया। उसकी नज़र के संकेत से नौकरानी ने पहले मेरे गिलास में एक पैग डाल कर बर्फ़ सोडा दिया फिर उसके गिलास में बनाने लगी।

वह नये पेग से घूँट ले कर फिर बोला--"चाय बागान की ज़िन्दग़ी में बहुत बोरियत। पांच-छः महीने बाद दो-तीन सप्ताह दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई न घूम आयें तो आदमी पागल हो जाये।"

"संगति का अभाव भारी हो जाता होगा।" सहानुभूति से कहा।
"इस स्वराज के साथ हम लोगों पर तो मुसीबत आ गई थी, ये ही ज़मीदारी उन्मूलन!" वह बताने लगा, "खुद काश्त और बागान के नाम पर कितना बचाया जा सकता था? सौ नहीं डेढ़ सौ एकड़! अट्ठाइस गाँव खोकर डेढ़ सौ एकड़ में कैसे सरता?"

"पिता बहुत दूरदर्शी थे, राजनीति की गहरी समझ, राजनैतिक नेताओं से सम्पर्क! अंग्रेजी शासन के समय कांग्रेस को मदद भी देते थे। वो 1947 के अंत में ही समझ गए, ज़मींदारी अब नहीं बच सकेगी। गांधी भी उसे न बचा सकेगा। भी ज़मींदारी सामयिक भावना के प्रतिकूल। अब ज़माना इंडस्ट्री का है।

भगवान् ने मौका भी बना दिया। स्वराज होते ही चाय बागान के ब्रिटिश मालिकों को कालों का आधिपत्य असह्य। पिता ने अवसर देख ज़मींदारी पर कर्ज़ा ले पहले एक 'सुन्नाल' इस्टेट ख़रीदी तो दस गाँव बेच डाले।

बाद में तुरन्त 'बचिया' टी इस्टेट भी ख़रीद ली। इधर सवा सौ एकड़ का एक फ़ार्म रख कर सब गाँव बेच डाले, ज़मींदारी उन्मूलन का क़ानून पास होने से डेढ़ बरस पहले ही अब एक इस्टेट साढ़े चार सौ एकड़, दूसरी सवा तीन सौ। सन् पचास के बाद चाय का बाज़ार भी बेहतर!"

डेढ़ घंटे में नौ हाथ हो गए थे। मेरे सैंतीस प्वांट, उसके बारह। उसके अनुरोध पर तीसरा पैग भी लेना पड़ा। नित्य व्हिस्की का शौक अपने बस का नहीं। साथ संगत में ली तो प्रायः दो पेग से अधिक न लेने की सावधानी।

नौकरानी गिलासों में ढाल रही थी। उसने अगले हाथ के लिए पत्ते फरफराते हुए मेरे सामने बर्थ के अभिप्राय से पूछ लिया--"ये औरत कैसी जंची?"

प्रश्न! जैसे माथे पर पत्थर आ पड़ा हो। अचकचा कर उसकी ओर देखा। ख्याल कौंध गया, अपनी पत्नी के बारे में ऐसा प्रश्न असंभव! उसकी और तन्वांगी की आयु के अन्तर की ओर भी ध्यान गया। संभल के कौतुहल से उत्तर दिया--"चमत्कार!"

"दो ही मास पहले इसके लिए साठ हज़ार दिए हैं।" उसने नौकरानी से गिलास हाथ में लेकर बताया। हम दोनों ने तीसरी बार चियर्ज कह कर घूँट लिए।

पत्ते चलते-चलते वह बताने लगा, "दूसरे बाज़ारों की तरह इस बाज़ार में भी दाम चढ़ते जा रहे हैं।" वह पत्तों को ध्यान से चलाने के लिए रुक-रुक कर बोल रहा था, 'तेरह बरस पहले वहाँ पहली लड़की का तीस हज़ार दिया था। वह सत्रह साल की थी। छः बरस बाद दूसरी के लिए पैंतालीस हज़ार। वह उन्नीस की थी। यह इक्कीस से ज़्यादा की पर साठ हज़ार!"

नए हाथ के लिए पत्ते मेरी और बढ़ाते हुए घूँट लेकर बोला--"अपनी और औरत की उम्र में मुनसबत का भी ख़्याल रखना चाहिए। इसके अलावा, एक वक्त पत्नी के अलावा एक से ज़्यादा औरत नहीं वार्ना औरत के साथ इन्साफ नहीं हो सकता। जब दूसरी ली पहली के नाम बैंक में दस हज़ार जमा कराकर बीस हज़ार में उसके लिए मकान और खेती के लिए ज़मीन दे दी। दूसरी के लिए बीस हज़ार और पच्चीस हज़ार में ज़मीन, मकान! दाम जो बढ़ गए हैं। किसी के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए! अब भी उनकी ज़रूरत परेशानी का ख्याल रहता है।"

ढाई पेग से ज़्यादा व्हिस्की पेट में पहुंच जाने से दिमाग़ कुछ उड़-सा रहा था तिस पर न्याय, नैतिकता और औचित्य की धारणा का यह अपरिचित पक्ष! उस उधेड़बुन में ध्यान पत्तों पर उतना न जम पा रहा था। बीस हाथ तक मेरे प्वांइट बानवे थे और उसके बयालीस परन्तु ट्रेन के बरेली स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर रुकते समय पचास प्वांइट का अंतर घट कर बाईस रह गया था। आँखों में गहरा गए लाल डोरों और चेहरे पर शराब के तनाव के बावजूद वह अविचलित, तटस्थ बात करता, खेलता जा रहा था। गाड़ी रुक जाने पर दो मिनट बाद हाथ ख़त्म हुआ।

"संगती के आनंद के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद!"

मैं उठना चाहता था। वह मेरा हाथ थाम पेंसिल से कागज़ पर लिखे हिसाब पर नज़र डालने लगा। इस बार मुझे दो प्वांइट मिले थे। दो-चार मिनट और ठहरने में हर्ज न था। बरेली स्टेशन पर एक्सप्रेस पन्द्रह मिनट रुकती है।

मैं मौन था। प्वांइट मैं ही लिख रहा था, उसे दिखाकर, इसलिए मालूम था। उसने नौकरानी की ओर हाथ बढ़ा कर मेरे लिए अबोध भाषा में कुछ कहा।

अनुमान सरल था, जुए में हारा पैसा भुगताना चाहता था।

"छोड़िये! छोड़िये!" मैं उठ खड़ा हुआ। उसके रोकते-रोकते भी सूटकेस और टाइप राइटर के लिए कुली को बुलाने कॉरिडोर में बढ़ गया।

कुली को लेकर लौटा तो वह बटुए से नोट गिन रहा था। बटुए की तरफ न देखकर उससे एक बार फिर संगति और ड्रिंक के लिए धन्यवाद में हाथ मिलाना चाहा। वह कॉरिडोर में आ गया था। हाथ में थामे नोट मेरे हाथ में देने का आग्रह। चौबीस प्वांइट के लिए मुट्ठी भर नोट! कुछ विस्मय, पर समझ लिया, पैसे वाला आदमी है, रूपया प्वांइट खेलने का आदी होगा।

मेरे "ना-ना" कहकर हाथ पीछे हटाने पर उसका आग्रह "नहीं-नहीं! खेल का हिसाब न चुकाना अनैतिक!" मुझ से हाथ मिलाते-मिलाते उसने नोट मेरे कोट की सीने पर जेब में खोंस दिये। कुली को लेकर रिटायरिंग रूम का रिज़र्वेशन किया। सोचा काफी ड्रिंक लिया है, पित्त न बढ़ जाये, कुछ खा लेना ज़रूरी है। लेट हो गया था सोचा, स्लाइस-आमलेट ही सही।

रेस्तरां में बैठ कर ख़याल आया सीने की खुली जेब में नोट रखना ठीक नहीं। भीतर की जेब में रखने के लिए पॉकेट में दो उंगलियां डाल कर नोट निकाले, इतने बड़े-बड़े नोट! क्या पांच-दस के! पांच-दस रूपया प्वांट! माई गॉड!

नोट निकाल कर देखे। शंका हुई व्हिस्की के प्रभाव में ठीक नहीं देख पा रहा हूँ। आँख मल कर ध्यान से, बहुत ध्यान से देखा, नोट सौ-सौ के चौबीस! पीठ पर पसीने की धारें बह गयी। रुमाल से माथे और चहरे को पौंछा--यदि हार जाता तो! इतना तो सब कुछ दे देने पर भी न बनता, अपना डेढ़ मास का वेतन!

स्लॉस और आमलेट की प्रतीक्षा में धक्-धक् सीने से सोच रहा था, कितना नैतिक व्यक्ति! चौबीस सौ रुपये का भी मोह नहीं! अपने सिद्धांत का पक्का। यह सामन्ती नैतिकता, जिसे मन भर जाने पर एक के बाद दूसरा तीसरा नारी शरीर मुंह मांगे दामों खरीदते जाने में कोई झिझक नहीं।

इस नैतिक बल के आधार उसके दोनों चाय इस्टेट पर काम करते अट्ठारह सौ आदमियों का श्रम! इस नैतिक भुगतान में उसके प्रति मजदूर का पचहत्तर पैसे का भाग....।